Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 69-70, Jan-Feb 2021

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 69-70, जनवरी-फरवरी 2021

दलित आत्मकथाओं में बाल जीवन का मनोवैज्ञानिक पक्ष

तरुण कुमार
पीएच. डी.
हिंदी विभाग
नेहु विश्वविद्यालय, शिलांग
मो.- 8178401687
ईमेल- talk2tarun89@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख में विषयगत दलित बाल जीवन में बाल्यावस्था में बालक की मनोदशा को चित्रित किया है। शोध आलेख में सर्वप्रथम हिंदी साहित्य इतिहास की आत्मकथाओं का संक्षेप में वर्णन किया है तदउपरांत, दलित आत्मकथाओं का उल्लेख किया है। इसके बाद बाल मनोविज्ञान पर चर्चा की गई है। तत्पश्चात् दलित आत्मकथाओं में बाल जीवन में समस्याओं और कुरीतियों को उजागर किया गया है। बाल जीवन में आम बालक और दलित बालक की मनोदशा पर चर्चा की गई है जिससे तुलनात्मक पद्धति का बोध होता है। प्रस्तुत शोध आलेख में विषयगत मनोवैज्ञानिक पक्ष को ध्यान में रखकर बाल मनोदशा, बाल जीवन में भय और शिक्षा की कमी को उजागर किया गया है। अंत में शोध आलेख का निष्कर्ष लिखा गया है।

प्रस्तुत विषय बाल जीवन की मनोदशा को उजागर करता है अब चाहे वह एक बालक हो या फिर एक दलित बालक। बाल्यावस्था में सभी समाज से प्रभावित होते हैं अब चाहे समस्याएँ कम हों या अधिक, बाल्य जीवन को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त हैं।

बीज शब्द - *दलित, हिंदी साहित्यिक आत्मकथाएं, दलित आत्मकथाएं, बाल्य जीवन का मनोवैज्ञानिक पक्ष, दलित बाल जीवन का मनोवैज्ञानिक पक्ष, मनोविज्ञान में भय, मनोदशा और शिक्षा की कमी*

आमुख

हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम आत्मकथा जैन कवि बनारसीदास की 'अर्धकथानक' मानी जाती है। उसके उपरांत रामविलास शर्मा की 'मेरी जीवन यात्रा', भारतेन्दु की 'कुछ आप बीती कुछ जगबीती', श्यामसुंदर दास की 'मेरी आत्मकहानी' आदि आत्मकथाएँ हैं। सत्तर के दशक में उभरने वाले कई महत्वपूर्ण विमर्शों में दलित विमर्श भी साहित्य के एक क्षेत्र के रूप में साहित्यिक दुनिया के सामने आया। हालांकि साहित्यिक दुनिया में अपना स्थान निर्धारित करने में काफी वक्त लगा किन्तु आज दलित साहित्य इतना लोकप्रिय और सक्षम साहित्य है कि हिंदी साहित्य में उसका अपना विशेष स्थान है। दलित साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा आदि विधाएँ समाहित हैं जिसमें सबसे महत्वपूर्ण दलित आत्मकथाएँ हैं। दलित आत्मकथाएँ भारतीय समाज का एक ऐसा चेहरा सभी के

सम्मुख प्रस्तुत करती हैं। जिसमें दलित वर्ग का शोषण, दमन, अत्याचार और सभी मानवाधिकारों से वंचित आदि दलित साहित्य में दिखाई देता है। दलित आत्मकथाओं में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आदि पक्षों में वंचित वर्ग की समस्याओं को देखा जाता है।

दलित साहित्य में सर्वप्रथम आत्मकथा मराठी भाषा में बाबा साहब अम्बेडकर ने 'मी कसा झालो' (मैं कैसे बना) लिखी थी। संभवतः जिससे प्रभावित होकर दलित साहित्य में आत्मकथाओं का दौर उभर कर सामने आया। और मराठी में आत्मकथाएँ जैसे- लिंबाले की 'अक्करमाशी', दया पवार की 'अछूत', लक्ष्मण माने की 'पराया', बेबी कांबले की 'जीवन हमारा', लक्ष्मण गायकवाड़ की 'उचक्का' आदि उभर कर सामने आई हैं। इससे प्रभावित होकर हिंदी भाषा में दलित आत्मकथाओं का विकास प्रारम्भ हुआ। वर्तमान समय में हिंदी भाषा में कई आत्मकथाएँ लिखी जा चुकी हैं। जैसे- नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे भाग I-II', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', माताप्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन तक', कौशल्या बैसंती की 'दोहरा अभिशाप', सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द', डॉ. तुलसीराम की 'मुर्दहिया और मणिकर्णिका' आदि आत्मकथाएँ दलित साहित्य में विद्यमान हैं।

दलित आत्मकथाओं में बाल जीवन एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसमें जीवन की कई समस्याओं से लेखक बाल्यावस्था से ही रू-ब-रू होता रहा है। बाल्यावस्था से ही वह शोषण और अत्याचार को अपने जीवन में अनुभूत करता है। जो उसकी जीवनचर्या को प्रभावित करते हैं। तथा उसके भावी जीवन के रूप व व्यवहार का निर्धारण करते हैं इस पक्ष को स्पष्ट करते हुए वाटसन का कहना था कि "किसी व्यक्ति का व्यवहार उसकी भीतरी और निजी अनुभूतियों पर आधारित नहीं होता। वह अपने माहौल से निर्देशित होता है। मानसिक स्थिति का पता लगाने के लिए किसी बाह्य उत्प्रेरक के प्रति व्यक्ति की अनुक्रिया का प्रेक्षण करना ही काफ़ी है।"[1] प्रस्तुत पंक्ति में वाटसन ने स्पष्ट किया है कि किसी भी व्यक्ति का व्यवहार उसकी भीतरी और बाह्य अनुभूतियों से नहीं अपितु उसके आस-पास के वातावरण और सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है।

बाल जीवन का मनोवैज्ञानिक पक्ष जब सामने आता है। तब आर्यन विकास इस संदर्भ में कुछ इस प्रकार से कहते हैं- "बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में विकसित हुआ है। इसके अंतर्गत बालकों के व्यवहार, स्थितियों, समस्याओं तथा उन सभी कारणों का अध्ययन किया जाता है। जिसका प्रभाव बालक के व्यवहार विकास पर पड़ता है, वर्तमान समय में, अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक कारक आदि मनुष्य तथा उसके परिवेश को प्रभावित कर रहे हैं। परिणामस्वरूप बालक, जो भावी समय की आधारशिला होता है, प्रभावित होता है।"[2] प्रस्तुत कथन से स्पष्ट होता है कि बाल जीवन में बहुत सी समस्याएँ भरी पड़ी हैं जहाँ बालक बाल्यावस्था में ऐसी परिस्थितियों से जूझता है पर विरोध और प्रतिरोध नहीं करता। फिर भी उनमें प्रतिरोध के भाव उमड़-उमड़ कर दृष्टिगत होते हैं। इसी प्रकार आर्यन विकास अपनी एक और पंक्ति में कहते हैं कि- "मनोविज्ञान की ये परिभाषायें

जीवित प्राणी के व्यवहार का अध्ययन, व्याख्या, उन पर पड़ने वाले प्रभाव आदि सभी का अध्ययन करती है। मनोविज्ञान, चूंकि मानव व्यवहार का अध्ययन करता है तो वह उन सभी तथ्यों, घटकों का भी अध्ययन करता है जो मानव व्यवहार को प्रभावित करते हैं।"[3] प्रयुक्त बात से आर्यन विकास ये स्पष्ट करते हैं कि मनोविज्ञान में मानव स्वयं के जीवन को प्रभावित करने वाले सभी तथ्य और घटकों का अध्ययन करता है जिनसे मानव का सम्पूर्ण जीवन परिवेश और व्यवहार प्रभावित होता है अब चाहे वह बाल्यावस्था, प्रौढ़ावस्था या वृद्धावस्था ही क्यों न हो। यही वह कारण है जो मनुष्य के बाल्य जीवन में मनोविज्ञान के भाव उभारते हैं। दलित आत्मकथा में भी बाल्य जीवन का वही मनोवैज्ञानिक पक्ष दिखाई देता है।

जैसा कि हम जानते हैं दलित आत्मकथाओं में बाल-जीवन में समस्याओं का उल्लेख देखने को मिलता है। ये आत्मकथाएँ बाल्य जीवन से चलकर प्रौढ़ावस्था तक पहुँचती हैं। जहाँ ये जीवन के अच्छे और कटु अनुभवों का उल्लेख सहज भाव से करती हैं। बाल्य-जीवन में समाज से प्राप्त अनुभव एक बालक की मनोदशा निर्धारित करते हैं। आर्यन विकास अपनी पुस्तक 'बाल विकास तथा मनोविज्ञान' में इस प्रकार बाल मनोभावों को व्यक्त करते हैं- "छोटा बच्चा सामाजिक परिस्थितियों को समझने के योग्य नहीं होता और इस कारण वह परिस्थिति का विश्लेषण नहीं कर सकता।"[4] उक्त पंक्ति में उन्होंने बाल्य जीवन में सामाजिक परिस्थितियों के योगदान को दर्शाया है जहाँ लेखक का मानना है कि सामाजिक परिस्थितियों को छोटा बच्चा समझने योग्य नहीं होता। इस कारण वह उनसे उपजी परिस्थितियों को अभिव्यक्त नहीं कर पाता। दलित आत्मकथाओं में बालक समाज में रहकर कभी रोजमर्रा की वस्तुओं के लिए और कभी समाज में स्वयं के अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है। जहाँ उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसने शायद ऐसे समाज में जन्म लिया है जिसे समाज में कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं है। वह अपने अधिकारों का हनन चुपचाप, बिना विरोध सहता रहता है। वह अपने साथ के अन्य बालकों के साथ मित्रता नहीं कर सकता क्योंकि उच्च वर्ण के लोग अपने बच्चों के मन में ऊंच-नीच, जात-पात का ऐसा जहर घोल देते हैं। तभी तो एक बालक दूसरे बालक से मिलना और मित्रता करना नहीं चाहता और वे अपने साथी बालकों से अछूतों सा व्यवहार करते हैं, उनका शोषण करते हैं, उनका छोटी जाति में जन्म लेने के कारण, उनके साथी उन्हें जाति सूचक शब्द से संबोधित कर, उनका उपहास उड़ाते हैं। नैमिशराय अपनी ने आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' में बाल जीवन पर अपनी बात इस प्रकार को रखते हैं-

"हम चमार हैं।" बा बोला।

"पर क्या चमार हिंदू नहीं होते ?" मैंने फिर पूछा था। बा ने जवाब देने के पूर्व पलभर मेरी ओर देखा था, फिर कहा- "चमार चमार होते हैं। न हिंदू न मुसलमान।"[5]

उक्त पंक्ति में वे बाल जीवन में जाति भेद की समाज पैठ को दर्शाते हैं। वे कहते हैं कि बाल्यावस्था में भेदभाव की व्यवस्था पिता के जवाब में 'चमार चमार होता है न उसकी गिनती हिन्दू में आती है न मुसलमान में वह आते हैं। ऐसी ही स्थिति उनकी एक और पंक्ति में देखी जा सकती है- "पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम गुलाम थे। इधर माँ बच्चा जनती और उधर पैदा होने वाले बच्चे के माथे पर उसकी जात लिख दी जाती। उसे उसकी जात की पहचान से रू-ब-रू करा दिया जाता।"[6] इन पंक्तियों में वे बालक के जन्म से ही उसके माथे पर उसकी जाति लिख दी जाती थी। मुत्यु तक वही जाति अब उसकी पहचान थी। श्यौराज सिंह बेचैन अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में कहते हैं कि- "बालश्रम मेरे होश संभालते ही पिता की मौत के बाद मेरे पीछे बीमारी की तरह लग गया था। मेरे श्रम और शोषण का लाभ गैर-दलितों खासकर यादवों ने तो उठाया ही, थोड़े समर्थ जाटवों और मुसलमानों ने भी कसर नहीं छोड़ी। फर्क इतना था कि जाटव काम के साथ वैसी छूत-छात नहीं बरतते थे जैसी यादव और मुसलमान बरता करते थे। असल में यहाँ के मुस्लिम तेलियों का भी हिंदूकरण हो गया था।"[7] उक्त कथन में लेखक ये व्यक्त करना चाहते हैं कि जाति का भेद किस प्रकार से बालक के जीवन में विद्यमान है। जहाँ दलित होने का लाभ गैर-दलित वर्ग ने भी उठाया जिनमें यादव, जाटव और मुस्लिम आदि प्रमुख रूप से हैं। दलित आत्मकथाओं में बाल्य-जीवन ऐसे कई कटु अनुभवों के साथ नियमित चलता रहता है। परंतु विरोध नहीं करता, अगर विरोध करें तो उसे और उसके परिवार को समाज से और गाँव से बहिष्कृत कर दिया जाता। इस भय के चलते वे कुछ नहीं कहते और प्रतिरोध की चेतना दिन-ब-दिन उभरती रहती है।

दलित आत्मकथाओं के बाल्य जीवन में एक प्रश्न भय भी है। जो बाल्य जीवन की मनोदशा को वर्णित कर देता है। बालक नाजुक और कोमल स्वभाव के होते हैं। उन्हें जिस साँचे में भी ढालो वे ढल जाते हैं। इस संदर्भ में वाटसन कहते हैं कि "मुझे एक बालक दे दीजिये और आप जैसा बनाना चाहते हो, मैं उसे वैसा ही बना दूँगा।"[8] प्रस्तुत बात से ये स्पष्ट होता है कि बालक को किसी भी साँचे में चाहे आसानी से मोड़ सकते हैं। क्योंकि बालक नादान और नासमझ होते हैं। उन्हें अच्छे बुरे की समझ नहीं होती है जिस कारण उन्हें कोई भी किसी भी रास्ते पर सरलता से चला सकता है। इसलिए बाल्य जीवन में समाज से उत्पन्न होती परिस्थितियाँ, उसमें भय की स्थिति पैदा कर देती हैं और यह भय की स्थिति हमेशा बनी रहती है। जो वह समाज में स्थित रूढ़ियों और भेदभाव के कारण महसूस करता है। जिसमें वह स्वयं को अकेला महसूस करता है। बाल्य जीवन में केन्द्रित भय के बारे में आर्यन विकास ने कुछ इस प्रकार कहा है- "भय का आधार बालक का अनुभव होता है। कभी-कभी बच्चे भय से परिचित नहीं होते और वे व्यर्थ की चिंता में पड़ जाते हैं। अप्रिय घटनायें भी भय की उत्पत्ति करती है।"[9] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि अप्रिय घटनाओं के कारण बालक व्यर्थ की चिंता में पड़ जाता है जिससे वह स्वयं को सभी के सम्मुख असहाय पाता है और यह अप्रिय घटनाएँ बालक के मन में भय की स्थिति पैदा करती हैं।

ऐसी ही भय की स्थिति के बारे में डॉ. तुलसीराम अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' में इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं- "एक बेर खाते खाते उसका बीज भी अचानक घोंट लिया। साथ ही बेर खा रहे मुल्कू ने जब बेर का बीज घोटते हुए देखा, तो तुरंत उन्होंने अन्य बच्चों से कहना शुरू कर दिया कि इसने (मैंने) बेर का बिया (गुठली) घोंट लिया है और अब इसके पेट को फाड़कर बेर का पेड़ निकलेगा। इतना सुनते ही अन्य बच्चे भी इस 'सत्य' को दोहराने लगे। डर के मारे मैं बेहाल हो गया। कई दिनों तक पेट से पेड़ निकलने की आशंका से ग्रस्त होकर ठीक से सो नहीं सका। डर के मारे घर में भी किसी से कुछ न बताया। चुपके से चमरिया माई को धार और पुजौरा चढ़ाने की मनौती माना और विनति की कि हे चमरिया माई। उस सम्भावित पेड़ को पेट में नष्ट कर दें।"[10] प्रस्तुत पंक्तियों में डॉ. तुलसीराम ने बाल्य जीवन की वह मनोदशा दर्शायी है। जहाँ बेर का बीज निगलने के पश्चात् बालक भयभीत होता है कि अब उसके पेट से पेड़ निकाल आएगा। इसलिए वह घर में किसी को भी नहीं बताता और अकेले में चमारिया माई की आराधना में लग जाता है। ताकि पेट से बेर का पेड़ का न निकले। डॉ. तुलसीराम अपनी आत्मकथा की एक पंक्ति में बाल्य मनोदशा को कुछ इस प्रकार से व्यक्त करते हैं- "दादी यह भी कहती थी कि महामारी में मरने वाली औरतें नागिन बनकर घूमती है। उनके काटने से कोई भी जिन्दा नहीं बचता। दादी मुझे अक्सर याद दिलाती कि किसी झाड़ी-झंखार से गुजरते हुए 'जै राम जमेदार' जरूर दोहराते जाना। ऐसा कहने से नाग-नागिन भाग जाते हैं। मैं दादी की सारी बातों को इस धरती का अकाट्य अंतिम सत्य मानता था। इसलिए अक्षरशः उसका पालन करता था।"[11] प्रस्तुत पंक्ति से यह स्पष्ट होता है कि बालक मन कितना निर्मम होता है जिसमें किसी बात का भय आसानी से पैठ कर जाता है। दादी के महामारी से मरने वाली औरतों के नागिन बनने की बात से भय की स्थिति बनना और दादी का बालक को उससे बचाव के लिए एक मंत्र का जाप करना, जिससे वो उसके निकट न आए। ऐसी रूढ़ियों के बारे में बताने का प्रयास किया है जहाँ बालक उन सब बातों को सत्य मानता है जिससे उसका भय बना रहता है। श्यौराज सिंह बेचैन अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में इस बात को कुछ इस प्रकार से संदर्भित करते हैं- "मेरे घर सहित पूरे चमरियाने में दारूबाजी का चलन तो दूर नशीले पदार्थों का नामोनिशान तक नहीं था। परंतु कुछ भूत-देवता सयानों पर आते थे, तो दारू मांगते थे। अपेक्षाकृत सम्पन्न सवर्ण महिलाएं इन सयाने-ओझाओं की असहमति बढ़ाती थीं। खास कर बांझ बनैनियाँ, मुसलमानियाँ और अहिरियाँ इन सयानों से बेटा माँगा करती थी।"[12] प्रस्तुत पंक्ति में रूढ़ि के रूप में विद्यमान भय को दर्शाया है। जिसका साक्षात्कार बालक श्यौराज ने बाल्यावस्था में अनुभूत किया। जहाँ भूत-देवता सयानों पर आते थे और चढ़ावें में दारू मांगते थे। इस चलन को सवर्ण महिलाओं द्वारा बढ़ावा दिया जाता था। इस सत्य को उन्होंने प्रस्तुत उद्धरण में मानवीय रूढ़ि के रूप देखा है।

दलित आत्मकथाओं में एक प्रश्न और है शिक्षा की कमी का। जो सामाजिक आर्थिक और धार्मिक आदि परिस्थितियों के कारण देखने को मिलती है। दलित आत्मकथाओं में चित्रित शिक्षा का स्तर उतना अच्छा नहीं था। अब चाहे वह स्वतन्त्रता से पहले या स्वतन्त्रता पश्चात्, ऐसी परिस्थितियाँ थीं अगर दलित बालक विद्यालयों में शिक्षा भी पाते थे तो उन्हें कक्षा में ब्राह्मणवादी मानसिकता का सामना करना

पड़ता था। वो कक्षा में कभी गुरु द्वारा या कभी साथी छात्रों द्वारा शोषित और प्रताड़ित किए जाते। अध्यापक द्वारा कक्षा में उन्हें एक कोने में बिना टाट पट्टी, दरी के जमीन पर बैठना पड़ता था। उन्हें रोजाना कक्षा में नई-नई समस्याओं और यातनाओं का सामना करना पड़ता था। जिसकी कल्पना उन्होंने कभी नहीं की होगी। ऐसा सिर्फ इसलिए होता था। क्योंकि वे नीची जाति से संबंध रखते थे। उन्हें पानी पीने के लिए अन्य सवर्ण बच्चों पर निर्भर होना पड़ता था। क्योंकि उन्हें पानी पीने के घड़ों से स्वयं पानी पीने का अधिकार तक भी न था। अगर कोई सवर्ण बालक उन्हें पानी पीला देता तो ही वो पानी पी पाते थे वरना वे पूरे दिन प्यासे ही रहते थे। ऐसी ही कई समस्याओं का वर्णन दलित आत्मकथाओं में वर्णित किया गया है। जो बाल जीवन की समस्याओं का उल्लेख करती है। ऐसी ही शिक्षा आधारित समस्या का उल्लेख नैमिशराय अपनी आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' की इस पंक्ति में करते हैं- "हमारी पढ़ाई-लिखाई, प्रगति से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं था। हम उनकी नजरों में घटिया लोग थे। हमारी जात की औरतों को तो उनके द्वारा बार-बार जलील होना पड़ता था कभी-कभी वे ऐसा भी सोचते थे कि हम उनके रहमो-करम पर जिंदा हैं।"[13] प्रस्तुत पंक्ति में वे स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार सवर्ण वर्ग के लोगों का दलित वर्ग के समाज की शिक्षा से कोई लेना देना नहीं था। क्योंकि वे दलित समाज को सिर्फ घृणित नजरों से देखते थे और उन्हें उन पर आश्रित समझते थे। ऐसी बात का उल्लेख 'मुर्दहिया' में डॉ. तुलसीराम कुछ इस प्रकार करते हैं- "इसके बाद दूसरा पाठ पढ़ाया गया कि पेशाब लगने पर खड़ा होकर दाएँ हाथ की सबसे छोटी उंगली दिखाना। शुरू शुरू में अधिकतर बच्चे 'उपस्थित' शब्द का उच्चारण नहीं कर पाते थे जिस पर मुंशी जी अविलम्ब गालियों की बौछार कर देते थे। विशेषकर, दलित बच्चों को वे 'चमरकिट' कहकर अपना गुस्सा प्रकट करते।"[14] उक्त पंक्तियों में वे बताते हैं कि किस प्रकार गुरु भी उनका कक्षा में शोषण करते थे। उन्हें 'चमरकीट' जाति सूचक शब्द से संबोधित करके पुकारते थे। उपरोक्त कथनों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय दलित वर्ग के बालकों के लिए शिक्षा ग्रहण करना अत्यंत कठिन कार्य था।

समाज में शिक्षा सवर्ण जाति को ही मिलती थी। शिक्षा प्राप्त करने के लिए कक्षा में दलित वर्ग के बालक को जो मानसिक प्रताड़ना मिलती थी। वो उनके मन को अंदर तक कचोट देती थी। परंतु उनका लक्ष्य इतना था कि शिक्षा प्राप्त कर वे जाति भेद की रूढ़ि को तोड़ सकें। ताकि समाज में उन्हें वो अधिकार मिले इसलिए वे शिक्षा के मार्ग पर अडिग रहते थे। इस संदर्भ में आर्यन विकास अपनी इस पंक्ति में बालक के मनोविज्ञान के बारे में कुछ इस प्रकार कहते हैं- "बालक में ऐसी बातों, आदतों एवं संस्कारों का विकास होना चाहिये जोकि उसके सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन को प्रभावित कर सकें।"[15] उक्त पंक्ति में वे स्पष्ट करते हैं कि बालक में ऐसे गुणों और संस्कारों का उदय होना चाहिए जिससे समाज और उनके व्यक्तित्व का निर्माण हो सके। परंतु दलित आत्मकथाओं में इसके विपरीत समाज और बाल्य जीवन का उल्लेख देखने को मिलता है। श्यौराज सिंह बेचैन अपनी इस पंक्ति में बाल्य जीवन की एक विपरीत दशा का उल्लेख करते हैं- "मैंने जब पूरी लय, तल्लीनता और भाव-विभोर होकर रामचरितमानस का एक उपखण्ड पढ़ा तो लोग प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सके। मुझे इसका अंदाजा तब

लगा जब लछमन बनिए की पत्नी जो हम सभी चमार-भंगियों के बच्चों को जंगली जानवरों के बच्चों की तरह दूर-दूर हट कहती थीं, उस दिन के बाद मुझे दुकान में भीतर बुलाने लगीं। चारपाई पर बिठाने लगी और उधार-पानी भी देने लगीं।"[16] प्रस्तुत पंक्ति में बेचैन स्पष्ट करते हैं कि बाल्य जीवन में जब उन्होंने रामचरितमानस का एक उपखंड पढ़कर सुनाया तो वहाँ बैठे लोग उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। बनिए की पत्नी जो कल तक उनका शोषण चमार-भंगियों के बच्चे दूर रहा करो। आज वही स्त्री उन्हें अपनी चारपाई पर बैठाने लगीं।

दलित आत्मकथाओं में बाल्य जीवन का मनोवैज्ञानिक पक्ष सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आदि परिस्थितियों के कारण उभरता है। इन आत्मकथाओं में मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे', डॉ. तुलसीरम की 'मुर्दहिया' तथा श्यौराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में बाल्य जीवन कितना संघर्षमय रहा है। जिसको देखने के पश्चात् यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि अन्य आत्मकथाओं में भी बाल्य जीवन इसी प्रकार संघर्ष करता प्रतीत होता है। बाल्य जीवन में मनोविज्ञान बालक के मन की दशा पर आधारित होता है। जहाँ बालक समाज से जो भी सकारात्मक या नकारात्मक अनुभूति प्राप्त करता है। वह उसे जीवन भर स्मरित रखता है। दलित आत्मकथाओं में वैसी ही ब्राह्मणवादी सोच का उल्लेख मिलता है जो अत्याचार, यातनाएँ और शोषण आदि से भरी हुई है। ऐसी भयावय स्थितियों को एक अबोध बालक के लिए भूलना मुश्किल है। इसी कारण दलित आत्मकथाओं के बाल जीवन में मनोवैज्ञानिक पक्ष सुगण और सक्षम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/व्यवहारवाद
2. विकास, आर्यन, बाल विकास तथा मनोविज्ञान (पृ.-41-42)
3. विकास, आर्यन, बाल विकास तथा मनोविज्ञान (पृ.-41)
4. विकास, आर्यन, बाल विकास तथा मनोविज्ञान (पृ.- 94)
5. नैमिशराय, मोहनदास, अपने अपने पिंजरे (पृ.- 51)
6. नैमिशराय, मोहनदास, अपने अपने पिंजरे (पृ.- 17)
7. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर (पृ.-163)
8. www.sarkarijobguide.com/child-development-and-pedagogy-part-3
9. विकास आर्यन, बाल विकास तथा मनोविज्ञान (पृ.-89)
10. डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया (पृ.- 45)
11. डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया (पृ.-42)
12. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर (पृ.-15)
13. नैमिशराय, मोहनदास, अपने अपने पिंजरे (पृ.-17-18)
14. डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया (पृ.-24)

15. विकास, आर्यन, बाल विकास तथा मनोविज्ञान (पृ.-91)
16. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर (पृ.-304)
17. चतुर्वेदी, डॉ. रश्मि, हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ, सरस्वती प्रकाशन, कानपुर
18. बेचैन, श्यौराज सिंह, सामाजिक न्याय और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
19. सिंह, सं. पुन्नी/ शर्मा, सं. कमला प्रसाद, भारतीय दलित साहित्य: परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
20. नवले, (सं.) डॉ. संजय/ काशीद, डॉ. गिरिश, दलित साहित्य: प्रकृति और संदर्भ, अमन प्रकाशन, कानपुर (उ. प्र.)
21. सिंह, डॉ. एन सिंह, दलित चेतना के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
22. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली
23. विकास, आर्यन, बाल विकास तथा मनोविज्ञान, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली